# बच्चे में प्रकृति की अवधारणा

इंदिरा जयसिम्हा

*'विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स' सामाजिक परिवर्तन व विकास की दिशा में एक प्रयास है। यह एक दूरगामी, सोचा–समझा और केंद्रित प्रयास है। इसकी मंशा, शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर बनाने की है ताकि समाज के दुर्बल लोगों समेत सबके लिए जीवन के अवसरों और संभावनाओं का विस्तार हो। इसका एक प्राथमिक उद्देश्य शिक्षा के सुधार पर काम करने वाली सामाजिक संस्थाओं का एक समुदाय बनाना है। इसमें शामिल है– देश में व्याप्त अच्छी शिक्षा की परिभाषा का परीक्षण करना, विभिन्न संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य और उनके संदर्भों को शिक्षा के क्षेत्र में लाना और अच्छी शिक्षा के विचार के लिए सरकारी, निजी, ग्रामीण, शहरी सभी संदर्भों में उसके निहितार्थ को खोजना। इसका 'विप्रो पार्टनर्स फोरम' एक मंच के रूप में उभरा है, जो विभिन्न सामाजिक संस्थाओं को शिक्षा पर अपने विचार साझा करने व उनके बीच एक संवाद स्थापित करने का अवसर उपलब्ध कराता है। इसका संवाद संस्थाओं को शिक्षा के विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने और इससे अपने काम को आगे बढ़ाने में मदद करता है। 16–18 सितंबर 2009 को बैंगलूरू में आयोजित दसवें विप्रो पार्टनर्स फोरम के संवाद में 'पारिस्थितिकी एवं शिक्षा' पर विमर्श किया गया था। इस संवाद में वैकल्पिक स्कूल – पूर्णा स्कूल (बैंगलूरू) की संस्थापक सदस्या ने अपने स्वयं के बचपन के अनुभवों के साथ ही उनके शिक्षक साथियों के बच्चों को पर्यावरण व प्रकृति के बारे में पढ़ाने के अनुभवों को इस आलेख में अभिव्यक्त किया है।*

## बच्चा और प्रकृति

शुरुआत में, मैं बच्चे और उनकी प्रकृति की अवधारणा को मेरे अपने बचपन के निजी विवरण के जरिए व्यक्त करूंगी। मेरी परवरिश झारखंड में हुई, एक कोयला खदान क्षेत्र के नजदीक। मेरे पिता एक रसायन संयंत्र में काम करते थे और इसलिए एसिड जयराम के नाम से मशहूर थे। बचपन के लिहाज से वह बहुत सुंदर जगह थी। स्कूल में हमारे यहां पहाड़ों पर क्रास कंट्री दौड़ हुआ करती थी, तीन जलधाराएं थीं जहां हम जाया करते थे, और एक बड़ा सा धंसा हुआ स्थान था जहां खेलकूद की गतिविधियां होती थी, पृष्ठभूमि में चारों और छोटा नागपुर का पठार था। सुबह–सुबह, मैं अपने लॉन में जाकर खूबसूरत पहाड़ियों के पीछे से सूर्योदय देख सकती थीं। मगर उन्हीं पहाड़ियों पर बोकारो थर्मल पॉवर स्टेशन के धुएं की चिमनियां थीं। मेरा स्कूल वहीं था, घर से करीब 16 मील दूर। हम संथाल लोगों को खदान पर काम करके घर लौटते देखते थे, एकदम काले हो चुके, मगर हाथों में हाथ डाले लड़के–लड़कियां, आदमी–औरत, सब सड़कों पर गाते हुए। फिर जब हम पाठ्यपुस्तकें पढ़ते, उस समय हरित क्रांति बड़ी चीज थी। तो हम कहा करते थे, ' ये किसान कभी रसायनों का इस्तेमाल करना नहीं सीखेंगे। ये लोग यूरिया डालकर कितनी ज्यादा उपज ले सकते हैं।' उस समय हम ऐसी ही बातें करते थे।

जिस कारखाने में मेरे पिता काम करते थे, वहां नाइट्रस ऑक्साइड संयंत्र आसमान में नारंगी धुंआ पैदा करता था जो हम देख सकते थे, और उसके आसपास के सारे पेड़ मर गए थे। वे नाइट्रेटिंग

संयंत्र में काम करते थे जहां मोनो नाइट्रो टॉलुइन बनाई जाती थी। हम आमतौर पर पिकनिक के लिए कोनार नदी पर जाया करते थे जहां बोकारों घायी का पहला बांध बनाया गया था। वहां बांध आज भी चालू हालत में है। यह बांध सिर्फ वर्षापोषित क्षेत्र के प्रबंधन के लिए बनाया गया था, यह बिजली पैदा भी नहीं करता था। पानी की गंध सूंघकर हम अपने पिता से कहा करते थे कि उनका कारखाना ही यह बदबू पैदा करता है, मगर वे इसके बारे में कुछ नहीं कहते थे और उनके नियोक्ता के प्रति वफादार बने रहना पसंद करते थे। यह हमारे बचपन के अनुभव का एक हिस्सा था।

दूसरी ओर, मेरी मां ने 1960 के दशक में रेचल कार्लसन को पढ़ा था और उनसे प्रेरित होकर वे कहती थीं, 'हमारे बगीचे में हम आलू, भिंडी, बरे वगैरह पर डीडीटी नहीं डालेंगे।' तो मुझे भी डीडीटी के हानिकारक असर का पता था। मैंने पिताजी से झगड़ा किया और हमारी सब्जियों वाली क्यारी में डीडीटी की मनाही की थी। मगर हम यूरिया का उपयोग करते थे। मैंने खुद पत्ता गोभी के पौधों के आसपास यूरिया डाला था। आज मैं जैविक हूं, तो यह टिकाऊ जीवन शैली की ओर एक लंबी यात्रा रही है।

कई अन्य बातों ने भी मुझे प्रभावित किया है। जैसे, जब मैं काफी छोटी थी और नई–नई मां बनी थी, उस समय भोपाल गैस कांड हुआ था। मैं बहुत परेशान हुई थी और आज तक भी परिवार का कोई व्यक्ति यूनियन कार्बाइड द्वारा निर्मित एवरेडी बैटरी नहीं खरीदता। मैं कहना चाहती हूं कि पर्यावरण के बारे में जागरूकता उस जगह का हिस्सा थी, जहां हम पले–बढ़े। कई वर्षों बाद एक पालक के नाते मेरी चिंता थी, 'जब मेरे बच्चे बड़े होंगे, तब पर्यावरण कैसा होगा?' मैंने देखा है कि जिन बीस वर्षों में हम गोमिया में थे, पहाड़ नंगे होते गए थे, और साल के घने जंगल गायब होते गए थे। वहां एक अद्भुत पहाड़ी थी जिस पर उन्होंने एक आम वानिकी प्रजाति एकेसिया ऑरिक्यूलोफॉर्मिस का जंगल लगाया था। मगर विचित्र बात यह थी कि पहले उन्होंने वहां पहले से मौजूद पेड़ों को काट दिए और फिर वनीकरण के नाम पर ये पेड़ कतारों में लगाए। उस समय हम हजारीबाग के नजदीक रहते थे, जहां हजारों बाघों का निवास था, आज वहां बाघों की संख्या सिफर है। मगर कारखाने के मैंगनीज क्षेत्र में जहां मेरे पिताजी काम करते थे, जहां विस्फोटक रखे जाते थे, वहां एक रॉयल बंगाल टाइगर मारा गया था और उसे घर–घर ले जाया गया था। आज बमुश्किल वहां कोई बाघ बचा हो। शायद, बेटला राष्ट्रीय उद्यान में कुछ बचे हों। मगर जब हम बच्चे थे, तब बाघ थे, हमारे बगीचे में भी उनके पदचिह्न देखें हैं। तो उस समय जो पर्यावरण था, वह काफी बदल चुका है।

हम बच्चे और उसके पर्यावरण पर लौटते हैं। हम शिक्षकों का सरोकार यह होता है कि पर्यावरण बच्चे का क्या करता है, और बच्चा पर्यावरण से कैसे जुड़ता है। यह धारणा राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा 2005 में भी झलकती है। झुग्गी बस्ती में रहने वाला कोई बच्चा भी उसी पर्यावरण से सीखता है। हम इस सीखने को ज्ञान कहें या नहीं, इसे हम कक्षा में लाएं या नहीं, हम इसका अर्थ बनने दें या नहीं, हम कक्षा में अपने शिक्षण के जरिए सोच समझकर बच्चे को प्रतिरोध करने दें या नहीं या उसका हिस्सा होने दें या नहीं– ये प्रश्न हैं, जो हमें शिक्षा के संदर्भ में पूछने होंगे।

पूर्णा के स्कूल में हमने कक्षा की उस प्रचलित धारणा पर सवाल उठाया, जो बच्चे और उसके निकट के पर्यावरण के बीच की कड़ियों को काट देती है। हो सकता है कि बच्चा शारीरिक रूप से कक्षा में उपस्थित है, पाठ्यपुस्तक पढ़ रहा है, मगर अपने आसपास की किसी चीज से जुड़ नहीं रहा है। गोमिया के स्कूल में मेरा यही हाल होता था। सारा मजा तो हमें तब नसीब होता था, जब

घंटी बज जाती थी। पिताजी हमें रसायन कारखाने में ले जाते थे, जहां हम वह देखते थे जो अपनी पाठ्यपुस्तकों में पढ़ते थे– उत्प्रेरक संयंत्र। मगर किसी आम कक्षा में ऐसे व्यावहारिक अनुभव की जरूरत नहीं मानी जाती थी।

सवाल यह है, – कक्षा के अपने अनुभव को बाहर की दुनिया से जोड़ने का मतलब क्या है? मुझे याद है, एक कक्षा जहां मैं पढ़ रही थी, जिसे बच्चों ने अंततः नाम दिया था 'फ्लाइज, फ्लीज एंड फ्लूज' जहां हम स्कूल के बाहर कोडोगेहल्ली मेनरोड पर घूमते थे, वहां लोग थूक रहे थे, कुछ लोग नंगे पैर चल रहे थे, और कुछ लोग टट्टी कर रहे थे। वहां बच्चों ने सीखा कि जन स्वास्थ्य का मतलब क्या है। उन्होंने यह सब कुछ गगनचुंबी बहुमंजिली इमारतों के बीच देखा था। इससे उन्हें सोचने का मसाला मिला, पर्यावरण के जैविक और सामाजिक अंगों के बारे में सोचने का। हमें खुद से यह सवाल पूछना होगा कि जब बच्चा कक्षा में इतिहास या विज्ञान जैसे विषय सीख रहा हो, तब बच्चे के पर्यावरण और मेरा मतलब है सामाजिक, सांस्कृतिक या प्राकृतिक पर्यावरण के कितने हिस्से पर उससे चिंतन करने को कहा जा सकता है। इसके अलावा, मुझे लगता है कि विज्ञान और वैज्ञानिक जैसी धारणाएं सामाजिक से बाहर नहीं हैं। मेरे ख्याल में 'वैज्ञानिक' को 'सामाजिक' के दायरे के अंतर्गत ही समझा जाना चाहिए। विज्ञान में परमाणु संरचना पढ़ाते हुए आप नागासाकी को अलग नहीं रख सकते। परमाणु ऊर्जा के बारे में पढ़ाते

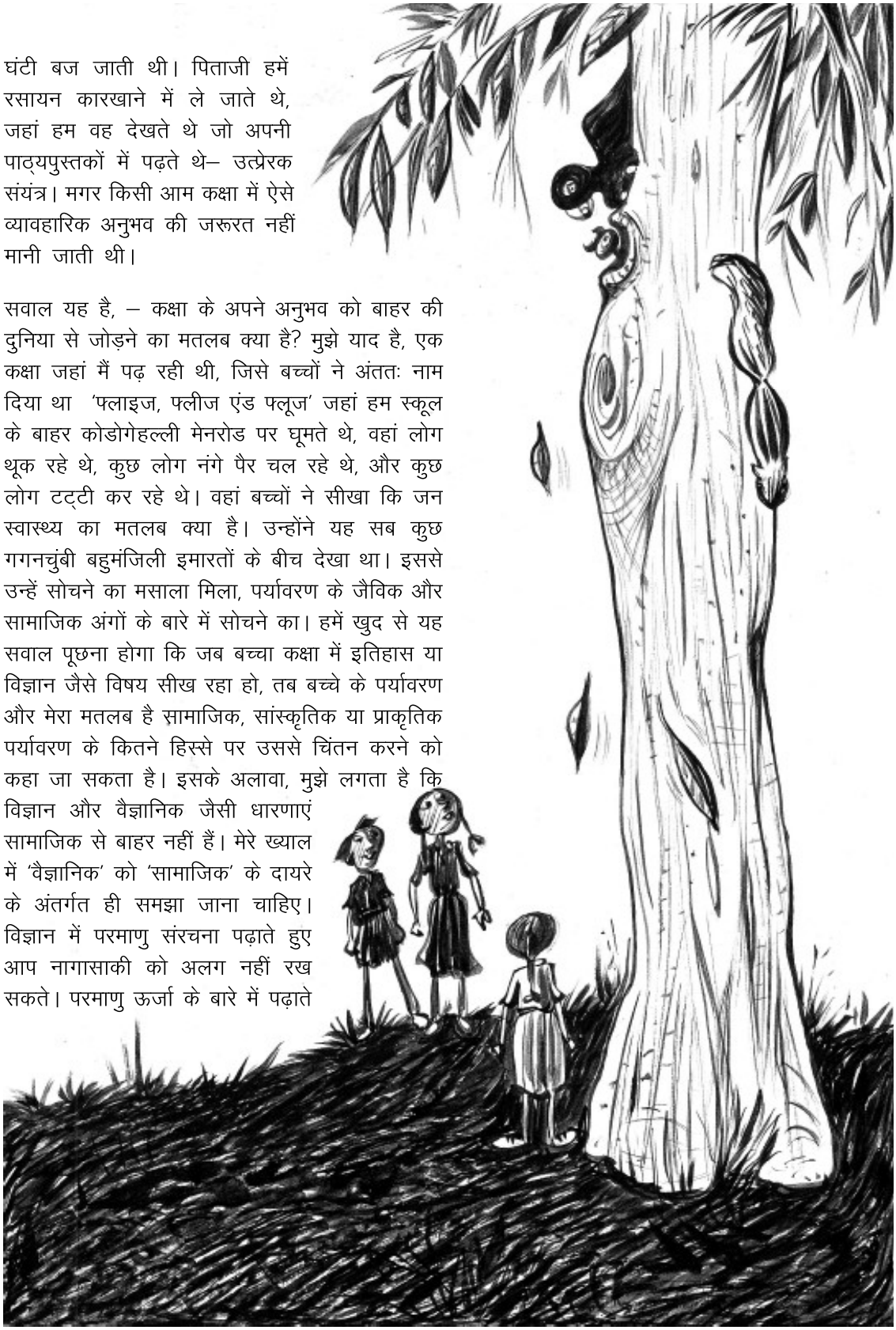

हुए आप जादूगोड़ा में खनन को या उत्तर–पूर्व में खनन के संबंध में चल रहे आंदोलनों को अलग नहीं रख सकते। आप बॉक्साइट से एल्युमिनियम निष्कर्षण की बात और स्ट्रिप माइनिंग की चर्चा को अलग–अलग नहीं कर सकते। नीलगिरि पहाड़ी में मेरी एक बहन रहती है, आदिवासियों के साथ काम करती है, और वह इसे निश्चित रूप से जीवन का मुद्दा मानती है। उसे पूर्णा में बुलाया था, बच्चों को यह बताने के लिए कि वहां क्या हो रहा है। उसने वहां जो कुछ होता है और शहरों में बहुत लोकप्रिय कोका कोला के एल्युमिनियम के डिब्बों के बीच संबंध जोड़ने में मदद की थी। वे पेचीदा कड़ियां हैं। वहां किसी ने सवाल पूछा था कि हमारा काम इन चीजों को सरल बनाना है? बात एकदम उल्टी है, हमारा काम सरलीकरण नहीं बल्कि इन सारी जटिलताओं के बारे में बताना है। हमें यह समझना होगा कि बच्चे प्रकृति और पर्यावरण के बारे में काफी पेचीदा ढंग से सोच सकते हैं और उन्हें पर्यावरण को बेहतर समझने में मदद करनी होगी।

किसी ने यहां पक्षी दर्शन की बात की थी। मुझे लगता है कि यह अच्छी बात है कि बच्चे शहरों में आज भी पक्षी देख सकते हैं। पूर्णा में बच्चों को स्कूल के समय यहां–वहां घूमने की छूट है। एक बार एक छोटा बच्चा मेरी सीनियर कक्षा में आ गया, जहां थोड़ा व्यवधान हुआ था क्योंकि बाहर की कक्षा के नजदीक ही बुशचैट नामक की एक चिड़िया थी। यह बच्चा बहुत जिज्ञासु था और घर जाकर उसने अपनी मां को बताया, 'इंदिरा ने मुझे एक बुशचैटर दिखाई।' और उसकी मां को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि ऐसी किसी चिड़िया का वजूद भी है। पांच वर्ष में वह बच्चा किसी भी पक्षी को उसके उड़ने के ढंग से पहचान सकता था। मैं फिर पूछती हूं, शिक्षकों के नाते हम बच्चे को कितने पर्यावरण के संपर्क में लाएं, कितना पर्यावरण बच्चे तक लाएं?

यहां मैं टैगोर की प्रेरक कहानी 'तोते की शिक्षा' का जिक्र करना चाहूंगी। इसमें वे इस धारणा पर सवाल उठाते हैं कि क्या शिक्षा के लिए हमें ढांचे बनाना चाहिए। कहानी में महाराजा तोते को शिक्षित करना चाहते, जो महाराजा के मुताबिक मूर्ख है, फूहड़ है और उसे 'तमीज नहीं है'। यह शैक्षिक ढांचे को सोने का पिंजड़ा कहता है। तो शैक्षिक ढांचे निर्मित करना चाहते हैं। जब हम शिक्षा के लिए ढांचा बनाते हैं, तो हमारा आशय क्या होता है? और ये ढांचे क्या हों? ये निहित सवाल हैं जिसके बारे में हमें विचार करना चाहिए।

मुझे एक चिंता यह भी है कि जब हम 'यूईई मिशन' चालू करेंगे तो साथ ही ढांचे भी खड़े करेंगे। हम यह निर्धारित करने की कोशिश कर रहे हैं कि किस तरह के ढांचे होने चाहिएं। क्या हम ऐसा कर सकते हैं? क्या कोई एक ढांचा है जो हर परिस्थिति में फिट हो जाएगा? हम वे कौन से अलग–अलग ढांचे सोच सकते हैं जो अलग–अलग परिवेशों में बच्चों को अपने पर्यावरण के बारे में सीखने में मददगार होंगे? इन सबको बच्चे और प्रकृति के बारे में कई बातों को जोड़कर देखा जा सकता है।

एक और मुद्दा उठाया जा सकता है कि बच्चे के लिए उसके पर्यावरण में क्या प्राकृतिक है। एक मां के नाते या एक शिक्षक के नाते क्या हमारी भूमिका प्राकृतिक है? क्या बात एक अकेले बच्चे की है जो अलग–थलग कुछ सीख रहा है? नहीं, बिल्कुल नहीं। इंसान का बच्चा एक मानव समाज का अंग होता है, मानव संस्कृति का अंग होता है। प्रकृति बनाम संस्कृति का एक विरोधाभास भी है। बच्चे को एक प्राकृतिक परिवेश में बढ़ने देने के विचार थोड़े रूमानियत से भरे भी हो सकते हैं। हो सकता है कि हम पूरी तरह भूल जाएं कि बच्चे के लिए

आसपास वयस्कों का होना, वयस्कों से सीखना, या तमाम अलग–अलग विधियों से सीखना सर्वथा प्राकृतिक है। यह कहना पियाजे की एक सरलीकृत समझ दर्शाता है कि अपने पर्यावरण को टटोलता बच्चा एक तन्हा वैज्ञानिक है। जहां वायगोत्स्की सायास सीखने की बात करते हैं, कि सीखना संस्कृति के माध्यम से होता है, कि बच्चा जो कुछ सीखता है, दुनिया का जो भी अर्थ निकालता है, वह उसके संबंधों के माध्यम से होता है, और इसमें उसके भौतिक संबंध भी मध्यस्थता करते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वायगोत्स्की रूस के एक मार्क्सियन थे और इसलिए उन्होंने भौतिक मध्यस्थता की बात की थी। क्या प्राकृतिक विकास जैसी कोई चीज है भी? कुछ मनोवैज्ञानिक हमें समझाएंगे कि 'प्राकृतिक विकास' जैसी कोई चीज सचमुच होती है मगर सांस्कृतिक मानवशास्त्री और समाजशास्त्री इससे सहमत न होंगे। यहां तक कि इस धारणा पर भी सवाल उठाए जा सकते हैं कि बचपन को कैसे समझा जाए।

पूर्णा में ऐसे सवाल बहुत आम हो गए थे, जिन्हें रोज व्यावहारिक परिस्थिति में संभालना होता है। शिक्षक क्या करे? शिक्षक कब हस्तक्षेप करे? एक पर्यावरण तैयार करने का क्या अर्थ होता है? सोचने का एक हिस्सा यह भी है कि हमारे यहां कुछ लोगों का एक समूह था जो इसी धारणा पर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था कि एक बच्चे के लिए प्राकृतिक रूप में विकास का क्या अर्थ है। शिक्षकों के नाते हमारी क्या जिम्मेदारी है? हम एक ऐसा पर्यावरण कैसे तैयार करें जो एक किस्म के सोच को सुविधाजनक बनाए या उसे बढ़ावा दे? टाइम टेबल क्या होना चाहिए? क्या आप उन्हें एक कक्षा का संचालन करने देंगे? हमने टाइम टेबल के साथ कई प्रयोग किए हैं– किसी ने टाइम टेबल बनाने पर हां कहा और फिर कुछ दिनों तक उसका पालन किया, अन्य लोगों ने कहा कि यदि बच्चे अंदर नहीं आते हैं, तो शिक्षक उनसे पूछ सकता है कि वे कक्षा में क्यों नहीं आए। बच्चों के एक समूह ने कहा कि टाइम टेबल नहीं होना चाहिए, और उन्हें लगता है कि वे जब चाहेंगे तब आएंगे और जब नहीं चाहेंगे तब नहीं आएंगे। बच्चों का एक समूह और था जो दो महीनों तक आया ही नहीं। तो अब क्या करें? तब हमें पालकों के सवालों का समाना करना पड़ा। बच्चे खुद नहीं जानते कि उन्होंने कुछ चीजें क्यों नहीं सीखीं या पढ़ीं, जबकि वे चीजें कक्षा में आने वाले बच्चे पढ़ चुके थे। हमने 'तोत्तो चान व्यवस्था' भी आजमाई जो कुछ बच्चों के लिए काम कर गई। पूरी कक्षा ने तोत्तो चान पढ़ी और बच्चों से पूछा कि क्या हमारे स्कूल में वैसी व्यवस्था हो सकती है, और हमने आजमाया। विचार यह था कि शिक्षिका हरेक के काम बोर्ड पर लिख देंगी और वे तय करेंगे कि कब आकर उसे पूरा करें। और एक बार काम खत्म करने के बाद, बाकी समय वे बाहर खेलने जा सकते थे। इस बात पर सहमति बनी मगर वास्तव में जो हुआ वह यह था, जो बच्चे शैक्षणिक काम के प्रति रुझान रखते थे वे पहले आते, काम खत्म करते और खेलने चले जाते। शेष बच्चे तीन बजे तक खेलते रहते। वे करीब साढ़े तीन बजे आते और उम्मीद करते कि वे छः के छः विषय निपटा लेंगे। लेकिन वे नहीं कर पाते थे। वे और पिछड़ते जाते। अंततः वे फंस जाते और शिक्षक के नाते आप फंस जाते। उस प्रयोग में एक बात यह हुई। एक और चीज जो हमने की, वह थी कि हमने बच्चों को एक प्रस्ताव दिया, कि वे जब क्रिकेट या कोई भी सामूहिक खेल खेलना चाहें, तो उन्हें एक सुगठित समूह के रूप में खेलना होगा। तो बच्चे साथ मिलकर कोई मैच पूरा करके साथ काम करने का फैसला करते। वास्तव में यह पूरी कक्षा ही होती थी। वे साथ–साथ आते, साथ–साथ खेलते और फिर साथ–साथ काम करते।

तीसरी बात यह हुई कि शिक्षकों ने पाया कि जब

कोई बच्चा अकेले काम करता, तो वह उस तरह की समझ हासिल न कर पाता, जो तब संभव होती थी जब वे समूह में काम करते थे, आपस में बातचीत करते हुए, विचारों को उछालते हुए, वगैरह। तो हम सबने, शिक्षकों और बच्चों ने साथ बैठकर स्थिति की समीक्षा की और तय किया कि हमें पुरानी व्यवस्था में लौट जाना चाहिए, जिसमें हम समूहों में काम करते थे और उस तरीके का पालन नहीं करना चाहिए जिसका वर्णन तोत्तो चान में किया गया था।

## बच्चे में प्रकृति की अवधारणा

'प्रकृति क्या है', इसकी अवधारणा बच्चे के दिमाग में होती है। यह बात मुझे एक घटना के दौरान उजागर हुई थी, वह घटना बताती हूं। हमारे स्कूल के बच्चे केरल में वायनाड के एक आदिवासी स्कूल में गए थे। इस स्कूल का नाम है कनवू। वे वहां आदिवासी बच्चों के साथ तीन महीने रहे थे। वे उनके साथ जंगलों में भी गए थे। वे आदिवासी बच्चे पूर्णा के समूह से उम्र में बड़े थे। वे जंगल में गए और अचानक उन्होंने एक पेड़ पर सिवेट बिल्ली (मारपट्टी) देखी। एक आदिवासी बच्चे ने तत्काल सायकिल की एक तानी ली और उससे एक छोटा–सा तीर बना लिया, और बिल्ली को मार गिराया। उसे वहीं जंगल में गुपचुप खा भी गए क्योंकि उन्हें पता था कि बेबी ममन, जो कनवू स्कूल चलाती हैं, को पता चलेगा तो वे बहुत नाराज होंगी। हमारे स्कूल के बच्चे हतप्रभ थे, क्योंकि उन्हें पता था सिवेट बिल्ली एक विलुप्त प्रजाति है, मगर साथ ही वे उस लड़के के हुनर पर भी अचंभित थे जो यह काम कर सकता था। तो अब प्रकृति को लेकर यह विरोधाभासी विचार था – आदिवासी बच्चों की प्रकृति की धारणा शायद अलग थी, जिसमें बिल्ली का होना एक सामान्य बात है और वह जीवन–मृत्यु के चक्र का एक हिस्सा थी और उसे मारना कोई बड़ी बात न थी। मगर पूर्णा के शहरी बच्चे एक ऐसे परिवेश से थे जहां बिल्ली दुर्लभ है और उसकी रक्षा की जानी चाहिए, और उसे खाने की वस्तु के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। वह एक ऐसी चीज है जिसे अभयारण्य में सुरक्षित रखा जाना चाहिए। यहां हमें प्रकृति की परस्पर विरोधी धारणाएं नजर आती हैं।

हमें बच्चों को पर्यावरण से संबंधित शब्दावली समझने में भी समर्थ बनाना होगा। जैसे, उपर्युक्त घटना के संदर्भ में मैंने अभयारण्य का जिक्र किया, तो अभयारण्य क्या होता है? क्या आप अभयारण्य में से लोगों को विस्थापित करते हैं? पूर्णा की एक छात्रा ने आगे चलकर वन्य जीवन जीव विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि पूरी की, उसने जंगल की धारणा के इस मुद्दे पर भी गौर किया। जैसा कि उपग्रह से प्राप्त चित्र दर्शाते हैं, आसपास रहने वाले लोगों के कारण आरक्षित वन सिकुड़ते जा रहे हैं। आसपास बसे ये लोग कौन हैं? इनमें से कई सारे लोगों को यहां तब बसाया गया था जब कोई बांध परियोजना शुरू हुई थी। या उन्हें अभयारण्य से बाहर निकाला गया है क्योंकि अभयारण्य एक केंद्र है, एक सुरक्षित क्षेत्र है, जहां लोग नहीं रह सकते। यह लड़की एक बुजुर्ग आदमी से मिली, जो एक विस्थापित आदिवासी थे। उन्होंने बताया, 'ठीक है, उन्होंने मुझे तो जंगल से बाहर कर दिया है, मैं अपना जंगल लगा लूंगा।' वास्तव में उन्होंने वे सारे बीज इकट्ठे कर लिए थे, जिनके साथ सोलिगा समुदाय के एक सदस्य के रूप में रहते आए थे, और उन्हें अपनी आधा एकड़ सरकारी जमीन पर उगाया था। उन्होंने बताया कि वे रागी या वैसी कोई चीज नहीं उगाएंगे क्योंकि वे उन्हें उगाना जानते नहीं। मगर उन्होंने अपने बीज संग्रह का उपयोग किया। मेरे ख्याल में यह अद्‌भुत बात है कि किसी ने ऐसा किया, और वे पर्यावरण के प्रति काफी सजग हैं। आप उन्हें जंगल के बाहर तो ले जा सकते हैं, मगर जंगल को उनसे बाहर नहीं कर सकते।

## बच्चा प्रकृति के रूप में

बच्चा स्वयं प्रकृति है। यह विचार वैसे तो वैकल्पिक शिक्षा के साहित्य में मौजूद है, जरूरत है कि हम इस पर सैद्धांतिक व व्यावहारिक दोनों नजरियों से विचार करें। हम शिक्षा से क्या अपेक्षा करते हैं? सबसे पहले तो मैं यह कहूंगी कि शिक्षा से कुछ अपेक्षा करना सही है क्योंकि शिक्षा सायास होती है। यह कोई बेतरतीब प्रक्रिया नहीं है। हर समाज में अपने लोगों को उन चीजों में शिक्षित करने की प्रक्रियाएं होती हैं जो उन्हें महत्त्वपूर्ण लगती हैं। यह प्रक्रिया सायास होती है और सोची–समझी होती हैं। फिलहाल हो यह रहा है कि जैसे–जैसे शिक्षा का यह खास स्वरूप फैल रहा है, वैसे–वैसे शिक्षा के स्थानीय ढांचों की उपेक्षा हो रही है, क्योंकि उनके पास इनके बारे में बातें करने की वैसी शैली नहीं है। यदि आप गांव में अपने दादा–दादी, नाना–नानी के साथ रहते हैं, तो जो कुछ आप सीखेंगे वह उससे बहुत अलग होगा जो आप स्कूल में सीखते हैं। तो यदि आप दादा–दादी, नाना–नानी के साथ किसी भी कुदरती परिवेश में बिताई गई अवधि को छोटा कर देते हैं, तो उस तरह के ज्ञान का क्या होता है? वह कहां जाता है? उदाहरण के लिए, एक दिन मैं बस में एक बुजुर्ग महिला से मिली थी, उनके हाथ में कुछ घास–फूस थी। मैंने पूछा कि ये काहे के लिए हैं, तो उन्होंने बताया कि ये उनके पेट के लिए अच्छी हैं। उन्होंने यह भी कहा कि "अगली बार जब तुम्हें पेट में दर्द हो तो डॉक्टर के पास जाने की बजाए यही पौधा खा लेना।" क्या उनकी बेटी इस पौधे का उपयोग इसी तरह करेगी? और जिस रफ्तार से सड़कें चौड़ी हो रही हैं, और हर चीज पर कॉन्क्रीट बिछाया जा रहा है, क्या कुछ सालों बाद ये जड़ी–बूटियां नजर भी आएंगी? क्या किसी को पता भी चलेगा कि हमने क्या खो दिया? जब हम शिक्षा के कुछ खास रूपों के बारे में और जीवन की जो शैली हम अपनाते जा रहे हैं, उसके बारे में सोचते हैं, तो इस तरह के सवाल मेरे मन में आते हैं। शिक्षा के हर रूप में प्रकृति की एक खास समझ निहित होती है और यदि हम प्रकृति व पर्यावरण की एक ऐसी समझ उभारना चाहते हैं जो हमें इस धरती पर टिकाऊ ढंग से जीने की गुंजाइश दे, तो हमें इसके प्रति सजग रहना होगा।

पूर्णा की नई इमारत देहाती क्षेत्र में, मुख्य शहर से काफी दूर इस मकसद से बनाई गई थी कि हमें अपने परिवेश के साथ प्राकृतिक ढंग से जुड़ने का अवसर मिले। पिछले एक–डेढ़ साल में स्कूल के चारों ओर आपको सिर्फ पेड़ और घनी झाड़ियां नजर आती हैं। इस अवधि में पूर्णा के बच्चों और शिक्षकों दोनों ने आसपास की जमीन और जीवन से जुड़ना सीखा है। हम कई बार पैदल घूमने निकले हैं, जिन्होंने खोजी यात्राओं का रूप ले लिया, जहां बच्चों ने नई जगहों की खोज की और उन्हें नाम दिए हैं। इनमें से कुछ जगहों के नाम काफी संगीतमय हैं, जैसे 'सैफायर गार्डन' और 'एण्ड ऑफ दी वर्ल्ड'। कुछ नाम काफी ठोस धरातल पर भी हैं, जैसे 'दी फॉरेस्ट', और कुछ नाम मजेदार हैं, जैसे 'अंडरवेयर फैक्ट्री'। एण्ड ऑफ दी वर्ल्ड, वास्तव में स्कूल के अहाते का अंतिम छोर है, जिसके बाद तेज ढलान है।

स्कूल के आसपास के कई पेड़ व दृश्य चित्रों के केंद्रीय विषय रहे हैं। विभिन्न उम्र समूह के बच्चों ने आसपास के कई सामान्य पेडों को पहचानना सीख लिया है, और वे उन पर घोंसले बनाने वाले कई पक्षियों को भी पहचानते हैं। काफी सारे बच्चों को जंगल में रहने वाले कीड़े–मकोड़े – मकड़ियां, गिंजाइयां, फैक्टूट, बरसात में फुदकते छोटे–छोटे मेंढक, लेडीबर्ड गुबरैले, झिंगुर और तमाम रंगों और आकारों के गुबरैले खोजने व देखने में मजा आता है। कुछ बच्चों ने स्कूल के आसपास से लकड़ी के लट्ठे, पत्तियां और ईंटें लेकर अपने वृक्ष–घर भी बना लिए हैं। अन्य बच्चों ने पेड़ों के घेरे के बीच

में ईंटें जमा ली हैं, जहां वे गपशप और पार्टियां करते हैं। कई बच्चों ने ऐसे–ऐसे पेड़ों पर चढ़ने की कोशिश की है जो बहुत सरल नहीं लगते हैं। यदि आपको यह जानना हो कि किन पेड़ों पर चढ़ना सरल है, या किन पेड़ों पर चढ़कर स्कूल या खेल के मैदान का सबसे अच्छा नजारा दिखता है, किन पेड़ों पर बैठना सबसे आरामदायक होता है, तो आपको बस इतना करना होगा कि किसी भी बच्चे से पूछ लीजिए और बहुत सारे बच्चे आपको अपनी–अपनी राय देने लगेंगे और पुराने स्कूल के पेड़ों और नए स्कूल परिसर के पेड़ों की तुलना करने में आपकी मदद करेंगे। मैं यह और बता दूं कि हर नए बच्चे को पेड़ पर चढ़ने में मदद मिली है। उनके पास पेड़ पर चढ़ने के क्रमिक अभ्यास हैं। यह सब बच्चे अपने आप करते हैं, और इसमें शिक्षक की कोई दखलंदाजी नहीं है।

## पैरेडॉइस लॉस्ट

अलबत्ता, नए हवाई अड्डे के निर्माण ने पूर्णा के आसपास काफी कुछ बदल दिया है। एक तो, पूर्णा की सड़क पर ट्राफिक बहुत बढ़ गया है। इसके अलावा, कई लोग स्कूल के आसपास खाली पड़ी जमीनें खरीद रहे हैं या बहुत पहले खरीदी गई जमीन पर निर्माण कर रहे हैं। पिछले कुछ दिनों में, स्कूल के प्रवेश द्वार के सामने की जमीन साफ कर दी गई है। सारे पेड़ काट दिए गए हैं, काफी सारी झाड़ियां उखाड़ दी गई हैं और सारी सूखी घास को जला दिया गया है। यह सब जिस रफ्तार से किया गया, वह चकरा देने वाला था। सोमवार को खिड़की से देखते तो आपको सुंदर पेड़ नजर आते। गुरुवार आते–आते इन पेड़ों के नाम पर बस ठूंठ, लकड़ी का बढ़ा–सा ढेर और जली हुई काली जमीन बची थी। जमीन के इस टुकड़े की सफाई के पहले दिन बहुत सारे बच्चे बहुत बेचैन थे और जानना चाहते थे कि क्यों सारे पेड़–पौधों को उखाड़ा जा रहा है। उन्हें खास तौर पर, यह चिंता सता रही थी कि पेड़ क्यों काटे जा रहे हैं। दूसरे दिन स्कूल आते ही कई बच्चों ने पहला काम सामने की जमीन का मुआयना करने का किया कि कितना नुकसान हो चुका है। उस समय तक पहले दो पेड़ काटे जा चुके थे। इसने कई बच्चों में आक्रोश पैदा किया और पूरे दिन वे ऐसे सवाल पूछते रहे, "पेड़ों को काटने की क्या जरूरत है? ऐसा क्यों नहीं करते कि घास साफ कर लें और पेड़ों को रहने दें?" उन्हें यह भी समझ नहीं आ रहा था कि हममें से कोई कुछ कर क्यों नहीं रहा है। एक बच्ची ने तो यह सुझाव भी दिया उसकी पूरी कक्षा और जो भी पेड़ों की परवाह करते हैं, सब जाएंगे और पेड़ों से चिपक जाएंगे, उन्हें बचाने के लिए। तीसरे दिन, अपने–अपने तरीकों से, उन्होंने बदलाव को स्वीकार करना शुरू कर दिया था। उस दिन चर्चा के दौरान, यह देखना रोचक था कि जो कुछ बच्चे 'भू–माफिया' जैसे शब्दों से परिचित थे, उन्होंने बताया कि कैसे अच्छी जगहों पर खाली पड़ी जमीन को गैर–कानूनी ढंग से हथिया लिया जाता है और उस पर निर्माण किया जाता है। गुरुवार के दिन, सामुदायिक कार्य के एक सत्र में, मूनस्टोन समूह के बच्चों से पूछा गया कि स्कूल के सामने वाली जमीन के टुकड़े पर क्या हो रहा है। उनके कुछ जवाब यहां देखिए :

दीपा– जब पेड़–पौधे काटे जा रहे थे, तो मुझे बहुत बुरा लगा। मगर यदि वे उस लकड़ी और जमीन का उपयोग घर बनाने जैसे किसी अच्छे काम में करेंगे तो मुझे थोड़ा अच्छा लगेगा। मुझे उन पेड़ों की बहुत याद आएगी क्योंकि हम वहां लुका–छिपी खेलते थे, और कभी–कभी पढ़ाई करते थे। हमें वे पेड़ बहुत अच्छे लगते थे।

पीटर– ठीक ही है। यह उनकी जमीन है। मगर उन्हें और ज्यादा पेड़ लगाने चाहिए। क्योंकि पेड़ों से हमें ऑक्सीजन और छाया मिलती है। पेड़ पक्षियों और जानवरों के घर होते हैं। यदि पेड़ हों, तो आप वृक्ष–घर बना सकते हैं।

अखिल –सब एकदम ठीक है। वह मेरी जमीन नहीं है। यदि वह मेरी जमीन होती, तो मैं वैसा नहीं करता।

गणेश –वे लोग कागज या प्लाइवुड बनाने के लिए, पैसे के लिए पेड़ काट रहे हैं। यदि आप इस तरह से पेड़ काटेंगे, तो आप प्रदूषण बढा रहे हैं, अपनी धरती को नष्ट कर रहे हैं, और खुद को नष्ट कर रहे हैं। इसलिए कृपया, पेड़ काटना बंद कीजिए। ज्यादा पेड़ लगाइए और जहां तक संभव हो, चीजों को रिसायकल करने की कोशिश कीजिए। हम भी तो प्रदूषण और पेड़ कटाई को रोकने की कोशिश कर रहे हैं। कृपया पेड़ों को बचाइए।

अरनव – जो लोग पेड़ काट रहे हैं, वे बुरा काम कर रहे हैं। उन्हें पेड़ नहीं काटना चाहिए। क्योंकि वे पर्यावरण को बिगाड़ रहे हैं और हरियाली कम कर रहे हैं।

ध्रुव पुजारी –वे जो कुछ कर रहे हैं, उससे मैं बहुत मायूस हूं। मैं और मेरे दोस्त उस जगह को स्वर्ग कहते थे क्योंकि वहां पक्षियों और तितलियों की इतनी अद्भुत विविधता है। मुझे उस जगह की कमी बहुत खलेगी।

मनोज –मुझे लगता है कि वे जितने पेड़ काटें, उससे ज्यादा उन्हें लगाने चाहिए। मगर मुझे लगता है कि सरकार को भी एक कानून बनाना चाहिए कि लोग जितने पेड़ काटें, उससे ज्यादा लगाएं। जमीन साफ होने का मुझे बहुत दुख है, मगर यह प्रकृति का तरीका भी है।

ध्रुव आर –जिन लोगों ने पेड़ काटे हैं, उन्होंने बुरा काम किया है। क्योंकि वे बहुत सारे जीवन की हत्या कर रहे हैं और अब वे उसे जला रहे हैं, जिससे प्रदूषण होता है। इसलिए मुझे लगता है कि उन्हें और ज्यादा पेड़ लगाना चाहिए।

गगन –कुछ लोग हमारे स्कूल के सामने पेड़ काट रहे हैं और जमीन का उपयोग अपने काम के लिए कर रहे हैं। वे जो कर रहे हैं, वह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। वे हमारे बढ़िया एयर कंडीशनर्स बरबाद कर रहे हैं। मैं नहीं चाहता कि वे पेड़ काटें।

समीर–जमीन साफ करने के लिए पेड़ काटना तो बुरी बात है ही, ऊपर से लकड़ियों को जलाने से प्रदूषण भी हो रहा है। यदि पेड़ काटने ही हैं, तो कम से कम उनका उपयोग मकान जैसी कोई उपयोगी चीज बनाने में करो। लकड़ी को जलाना क्यों?

तो एक मायने में बच्चे स्वामित्व के मुद्दों, जमीन के वैकल्पिक उपयोग को देख रहे हैं और उनके प्रति संवेदनशील बन रहे हैं, और इन सरोकारों से सम्बंधित कानूनी मुद्दों से भी दो–चार हो रहे हैं। उन्होंने कहा कि सरकार को कानून बनाना चाहिए। वे इस बात का सम्मान करते हैं कि कोई सम्पत्ति किसी की हो सकती है, हालांकि उस पर भी सवाल उठा सकते हैं। मगर इतना स्पष्ट है कि जब गुंजाइश दी जाती है, तो बच्चे खुद चीजों के बारे में सोचते हैं। उनमें काफी छोटी उम्र से ही ऐसे कई मुद्दों के बारे में सोचने की क्षमता है।

---

**इंदिरा जयसिम्हा** : पूर्णा स्कूल (बैंगलूरू) की संस्थापक रही हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी में काम करती हैं।
**साभार** : 10 वां पार्टनर्स फोरम : 'पारिस्थितिकी एवं शिक्षा' सेमिनार 16–18 सितम्बर 2009, बैंगलूरू